संस्कृत के जैन काव्यों का मूल्यपरक अध्ययन

प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन, उदयपुर

संस्कृत भाषा में प्राचीन समय से काव्य लिखे जा रहे हैं। जैन आचार्यों ने भी अनेक काव्य लिखकर संस्कृत साहित्य की समृद्धि में अपना योगदान किया है। विक्रम की दूसरी शताब्दी से वर्तमान युग तक जैन कवियों द्वारा संस्कृत काव्य लिखे जा रहे हैं। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने अपनी एक पुस्तक में संस्कृत के जैन कवियों के योगदान का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। अन्य विद्वान् भी इस दिशा में कार्यरत हैं। वर्तमान युग में विद्वत् जगत् में संस्कृत काव्यों के के पठन–पाठन की जो परम्परा प्रचलित है, उसमें संस्कृत के जैन काव्यों का अध्ययन प्रायः नहीं के बराबर होता है। इसके पीछे कई कारण रहे हैं। प्रमुख कारण यह है कि संस्कृत के जैन काव्य पूरी तरह अभी प्रकाश में नहीं आए हैं। जो प्रकाशित हैं, वे सहजता से उपलब्ध नहीं हैं। अतः इस महत्वपूर्ण साहित्य को विद्वानों तक पहुँचाने की प्रक्रिया होनी चाहिए। तभी इन काव्यों का समुचित मूल्यांकन हो सकेगा। प्रस्तुत निबन्ध में कुछ प्रमुख जैन काव्यों की कतिपय विशेषताओं को वर्तमान साहित्य के सन्दर्भ में उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है। संस्कृत के जैन काव्यों में नायक अथवा आराध्य का चुनाव प्रायः गुणों के आधार पर किया गया है, किसी व्यक्तिगत पक्षपात या चापलूसी के निमित्त नहीं। संस्कृत के प्राचीन कवि सिद्धसेन दिवाकर ने अपनी **द्वात्रिंशिका** में काव्यरचना का हेतु कहा है– ''मैं न अपनी काव्य शक्ति के प्रदर्शन के लिए और न दूसरों से ईर्ष्यावश, न महावीर की कीर्ति के विस्तार के लिए और न ही किसी की श्रद्धा से काव्य में प्रवृत्त हुआ हूँ। अपितु हे प्रभु, आप गुणज्ञ व्यक्तियों द्वारा पूजित हैं, इसीलिए आपके प्रति मेरा आदर है। इस कारण से आपको मैंने काव्य का विषय बनाया है।

न काव्याशक्तेर्न परस्परेर्ष्यया न, वीरकीर्तिप्रतिबोधनेच्छया।
न केवलं श्राद्धतयैव नूयसे, गुणज्ञपूज्योऽसि यतोऽयमादरः।।

–प्रथम द्वात्रिंशिका

इन काव्यों में केवल शब्द–चमत्कार या पांडित्यप्रदर्शन नहीं है, अपितु भाव–सम्प्रेषण की सहजता सर्वत्र व्याप्त है। संस्कृत के ये काव्य वर्तमान युग के साहित्य को विभिन्न प्रेरणाएँ देने में ही समर्थ नहीं हैं, अपितु वे काव्य के मार्ग को भी प्रशस्त करते हैं। 13वीं शताब्दी के महाकवि अभयदेव ने अपने **जयन्तविजय** नामक महाकाव्य में श्रेष्ठ काव्य को परिभाषित कर कहा है कि जिस प्रकार एक चन्दन वृक्ष की गन्ध के सम्पर्क से समस्त वन के वृक्ष चन्दन की सुगन्ध से व्याप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार सफल काव्य वही है, जिसकी सुधामयी उक्तियाँ अज्ञानी कवियों को भी कवि बनाने में समर्थ हों–

जयन्ति ते सत्कवयो युदुक्त्या, बाला अपिस्युः कविताप्रवीणाः।
श्रीखण्डवासेन कृताधिवासाः, श्रीखण्डतांयान्त्यपरेऽपि वृक्षा।

–ज.वि. 1/17

संस्कृत के जैन काव्यों में काव्यरस की पर्याप्त अभिव्यक्ति हुई है। भौतिक जगत् और लौकिक भावों का विस्तार से वर्णन हुआ है। यह सब सौन्दर्य की शास्वत अनुभूति के लिए किया गया है। किन्तु इस सब प्रयत्न से भी पात्रों के मन की शान्ति अतृप्त ही रही तब जैन कवियों ने कथानक को नया मोड़ देकर आध्यात्मिक मूल्यों की ओर अपने पात्रों को प्रवृत्त किया है, जहाँ वे जीवन के शाश्वत् मूल्यों की उपलब्धि कर सके हैं। इस दृष्टि से संस्कृत के जैन ग्रन्थ काव्य के चरम लक्ष्य के अधिक निकट हैं। वे केवल भौतिक स्थूल वर्णनों में खोकर नहीं रह गए हैं। उनकी यह प्रवृत्ति वर्तमान साहित्य के लिए एक आदर्श उपस्थित करती है।

जैन कवियों ने यद्यपि काव्यजगत् की प्रायः सभी रूढ़ियों का उपयोग किया है, किन्तु इन कवियों की स्वानुभूति निराली है। उन्होंने कई नये बिम्ब काव्य–जगत् में स्थापित किए हैं। 10वीं शताब्दी

के महाकवि वीरनन्दि ने अपने **चन्द्रप्रभचरितं** में साधनहीन व्यक्ति का शीतकाल कैसे व्यतीत होता है इसका एक रूपक बांधा है। कवि कहता है कि अटवी में अजगरों की सांस से गर्म होकर चारों और फैली हुई वायु से पर्वतों पर चढ़े हुए बन्दरों का जाड़ा दूर हो जाया करता है और वे शीतकाल को सुखपूर्वक व्यतीत करते हैं–

सततप्रसूतैरपोढशीताः शयुनिः, श्वासचयोष्णितैर्मरुभिदः।
गमयन्ति महीधराधिरूढा, शिशुरर्तुप्लवगाः सुखेन यस्याम्।।

–च. प्र. 6/10

वीरनन्दि कवि की स्वाभावेक्तियाँ भी अति सटीक हैं। कवि लक्ष्मी की स्वभाविक चंचलता का वर्णन करते हुए कहता है कि लक्ष्मी रात्रि में चन्द्रमा के पास और दिन में कमल के पास पहुँच जाती है किन्तु यह लक्ष्मी (शोभा) चंचल होने पर भी नायक (राजकुमार श्रीवर्मा) के शरीर को छोड़ने में समर्थ नहीं हुई। क्योंकि उसमें चन्द्रमा और कमल दोनों के गुण हैं –

तुषाररश्मिं भजते निशायां, दिनागमं याति सरोजषण्डम्।
इति प्रकृत्या चपलाति लक्ष्मी, रियेष मोक्तुं न तनुं तदीयाम्।

–च. प्र. 4/6

संस्कृत के जैन काव्यों का चरम लक्ष्य भले ही आत्मोपलब्धि रहा हो, किन्तु उनमें लौकिक जीवन की उपेक्षा नहीं की गयी है। भट्टारक वर्धमान कवि ने अपने **वरांगचरितं** में कर्तव्यबुद्धि, गुरु–विनय, मित्र–बन्धुस्नेह, दीन अनाथों के प्रति करुणाभाव, शत्रुओं के मध्य प्रताप–प्रदर्शन आदि मानवीय मूल्यों को लौकिक जीवन में आवश्यक माना है। **–व.च.3/43**

मैत्री भाव का मूल्यांकन करता हुआ कवि कहता है कि ... मित्रता से लोक अनुकूल होता है, पृथ्वी साध्य होती है शत्रु आधीन होते हैं, सभी बन्धु–बान्धवों में स्नेह बना रहता है और स्वजनों के बीच लक्ष्मी स्थिर होती है–

लोकोऽनुकूलो धरणी सुसाध्या, मैत्रयाच वश्यारिपवो भवन्ति।
सद्वांधवा स्नेहपरा नराणां, लक्ष्मीः स्थिरा बन्धुजनेषु सत्सु।।

–व.च. 2/68

जीवन की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन की आवश्यकता को भी जैन कवियों ने स्वीकारा है। पर इस धन का अर्जन न्याय के अनुसार होना चाहिए– **न्यायापात्तप्रकट विभवाः साधयन्ति त्रिवर्गं।**

जीवन–व्यापार को दो शब्दों में प्रकट करते हुए कवि ने कहा है– विपत्तिकाल में धीरज, संघर्ष की युद्धभूमि में साहस, दान देते समय उदारता और ध्यान में विवेक रखना जीवन के आवश्यक कर्त्तव्य हैं । यही वे मूल्य हैं जो मानव को श्रेष्ठ बनाते हैं।–

धैर्यं विपदि कर्त्तव्यं साहसं समरांगणे।
औदार्यं दानकाले च ध्याने सग्ज्ञानमुत्तमैः।। –व.च. 7/78

इन जैन कवियों ने जीवन के यथार्थ को बहुत नजदीक से देखा है। बाल्य अवस्था, यौवन अवस्था एवं वृद्धावस्था को चित्रित करने वाले अनेक दृश्य संस्कृत काव्य में हैं। किन्तु 10वीं शताब्दी के महाकवि हरिचन्द्र ने **धर्मशर्माभ्युदय** में वृद्धावस्था का जो रूपक प्रस्तुत किया है वह हृदयग्राही है। कवि कहता है कि.... 'जो बिना पहिने ही शरीर को अलंकृत करने वाला आभूषण था, वह मेरा यौवनरूपी रत्न कहाँ गिर गया? मानों उसे खोजने के लिए वृद्ध ही ऊपर के शरीर को झुकाकर नीचे देखता हुआ जमीन पर भ्रमण करता है–

असंभृत मण्डनमंनायष्टे, र्नष्टं क्व मे यौवनरत्नमेतम्।
इतीव वृद्धो नतपूर्वकायः, पश्यन्नवोऽधो भुवि बभ्रमीति। –ध. श. 4/59

संस्कृत के जैन महाकवियों ने अपने काव्यों में अनेक आदर्श उपस्थित किए हैं। उन्होंने एक अच्छे समाज के कई दृश्य प्रस्तुत किए हैं। महाकवि असग के **वर्धमानचरितं** में राजा–रानियों के अतिरिक्त साधारण गृहस्थों के दाम्पत्य–जीवन का स्वाभाविक वर्णन है– (3/91, 5/15 आदि)। वादिराज के **पार्श्वनाथचरितं** में दाम्पत्य के खट्ट–मीठे अनुभवों का चित्रण हैं– (2/26)। वस्तुपाल के **नरनारायणान्द** महाकाव्य में सुभद्रा और अर्जुन के गृहस्थ जीवन की प्रेरणास्पद झांकी है (15वां सर्ग)। इसी प्रकार इन काव्यों में माता–पिता के साथ सन्तान का सम्बन्ध (**प्रद्युम्नचरितं** 5/11), सन्तान के गुण, भाई–भाई का सम्बन्ध (**शत्रुजंयकाव्यं** 2/432–33), भाई–बहन का स्नेह (**यशोधरचरितं** चौथा सर्ग) आदि में पारिवारिक प्रमुख जीवन मूल्यों का विवेचन है।

बचपन के संस्कारों का निर्माण और जीवन के विकास के सम्बन्ध में भी अनेक तथ्य इन जैन काव्यों में प्राप्त हैं, जो वर्तमान युग के साहित्य के लिए एक आधारभूमि प्रदान करते हैं। वर्तमान युग की सम्पूर्ण शिक्षा–व्यवस्था के लिए भी संस्कृत के मूर्धन्य महाकवि वादीभसिंह ने अपने **क्षत्रचूडामणि** की एक पंक्ति में बड़ी सटीक बात कही है कि– कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य की जानकारी और तदनुसार आचरण यदि प्राप्त नहीं हुआ तो शिक्षा प्राप्त करने में किया गया परिश्रम व्यर्थ है–

हेयोपादेयविज्ञानं नोचोद् व्यर्थः श्रमः श्रुतौ। –क्ष. चू. 2/44

ऐसी अनेक सूक्तियाँ, जीवन के विविध मूल्य संस्कृत के जैन काव्यों में उपलब्ध हैं। वस्तुतः ये रचनाएँ नीति और काव्य के समन्वयी ग्रन्थ हैं।

लगभग तेरहवीं (शताब्दी वि. सं. 1312–15) में इस देश में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा था। ऐसी नाजुक स्थिति में देश के शासकों के पास भी अन्न का अभाव हो गया था। तब समाज के व्यापारियों एवं श्रेष्ठियों ने जनता की मदद की थी। उनमें गुजरात के जगडूशाह प्रसिद्ध थे। उन्होंने अकाल के समय में गुजरात, मालवार सिन्ध, दिल्ली और काशी के नरेशों को प्रजा–पालन के लिए अनाज उपलब्ध कराया था। ऐसे प्रजा–वत्सल श्रेष्ठियों को नायक बनाकर जैन कवियों ने अपने संस्कृत काव्य लिखे हैं। कवि सर्वानन्द का **जगडूचरितं** काव्य आज के साहित्य के लिए एक दीपस्तम्भ की तरह है। साहित्य का यह प्रमुख कार्य है कि वह उदात्तचरित्र वाले ऐसे नायकों को अपने काव्य का विषय बनाए, जिनका जीवन जनहित के लिए समर्पित हो, न कि स्वार्थपूर्ति के लिए।

संस्कृत के इन जैन काव्यों में वर्णित अन्य विस्तार को छोड़ भी दें तो संक्षेप में ये दो जीवन मूल्य वर्तमान सन्दर्भ में बहुत उपयोगी हैं। वे दो महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित हैं, जो इन काव्यों के कथानायक हैं। **भरत–बाहुबली महाकाव्य** का प्रकाशन जैन विश्व भारती, लाडनूँ से हुआ है। इस काव्य में राजा बाहुबली ने चक्रवर्ति भरत के समक्ष जो अहिंसक–संधि का प्रस्ताव रखा है, वह इस विश्व की प्रथम अहिंसक सन्धि है। इसमें जन–समुदाय के जीवन को, मानव के जीने के अधिकार को प्रथम मूल्य प्रदान किया गया है। यहां व्यक्तिगत स्वार्थ राज्य लिप्सा को प्रमुखता नहीं दी गई।

इसी प्रकार **नेमिनिर्वाणकाव्य** में नेमिनाथ ने अपने विवाह में पशुओं को अभय प्रदान करके देश के पशुधन की सुरक्षा में पहला दीपक जलाया है। मूक पशुओं की जीवन रक्षा में उन्होंने अपने गृहस्थ जीवन के तमाम सुख भेंट कर दिए हैं। राजा बाहुबली के द्वारा स्थापित मानवरक्षा और यदुवंशी नेमिकुमार के द्वारा प्रवर्तित पशुधन रक्षा इन दो मूल्यों को ही यदि आज का साहित्य अपना ले तो प्राचीन संस्कृत साहित्य की विरासत का वह सच्चा हकदार बन जाएगा। जीवन–संरक्षण के ये शास्वत मूल्य जैन संस्कृत काव्यों की आत्मा हैं।

संस्कृत के जैन काव्यों में अधिकांश काव्यों की रचना किसी राजा, मन्त्री, गुरु अथवा श्रद्धालु श्रावक की प्रेरणाओं से की गई है। अमरचन्द्रसूरि, उदयप्रभसूरि, माणिक्यचन्द्रसूरि, नयचन्द्रसूरि आदि कवियों को राजाश्रय भी प्राप्त था। किन्तु इन कवियों ने अपने काव्य का नायक उन्हीं व्यक्तियों को बनाया है, जिन्होंने तन–मन–धन से लोकहित का कार्य किया है। कुमारपाल, वस्तुपाल जगडूशाह आदि

ऐसे ही चरित नायक हैं। इनके आदर्श गुणों को प्रचारित करने के लिए इन कवियों ने काव्य लिखे हैं। डॉ. श्यामशंकर दीक्षित ने इन कवियों का मूल्यांकन करते समय ठीक ही कहा है कि इन कवियों द्वारा किए गए प्रशस्तिगान में न तो कहीं चाटुकारिता की प्रवृत्ति पायी जाती है और न मिथ्या यश–वर्णन करने की प्रवृत्ति।

वर्तमान साहित्य के सन्दर्भ में जैन काव्यों की इस महत्वपूर्ण प्रवृत्ति पर चिन्तन करना आवश्यक है। पहले के समाज में कुछ ऐसे साहित्य–प्रिय कवि–वत्सल लोग, शासक थे, जो कवियों की प्रतिभा का आदर करते हुए उन से काव्य लिखवा लेते थे। आज ऐसे काव्य–प्रेमियों का प्रायः अभाव हो गया है। भौतिकवाद की दौड़ ने शासक, श्रेष्ठि अथवा संघ–प्रमुख के रसिकहृदय को या तो सोख लिया है या उसको विकृत कर दिया है। इसके लिए समाज के कर्णधारों को पुनः आत्मलोचन करना होगा तब वे साहित्य के प्रचार–प्रसार में समभागी बन सकेंगे।

इस सम्बन्ध में दूसरी बात यह भी चिन्तन करने की है कि वर्तमान साहित्य का आदर्श नायक अथवा पात्र अब कौन रहा गया है ? काव्य में वर्णित उसके गुण किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं ? ऐसा लगता है कि पहले के कवि आसानी से समाज में से किसी भी गुणी और कर्त्तव्यनिष्ठ, लोकहितकारी पात्र अथवा नायक का चयन कर लेते थे। क्योंकि तब समाज में ऐसे लोग थे। वर्तमान में साहित्यकार इस दुविधा में हैं कि वे अपने काव्य का नायक कहाँ से लाए ? उस सात्विक वातावरण को कहां खोजें, जिसमें उसका काव्य विस्तार पा सके। शायद यही कारण है कि आज अच्छा साहित्य किसी भी भाषा में प्रायः लुप्त हो गया है। इस सांस्कृतिक ह्रास के प्रति समाज और कवि दोनों को सचेत होना पड़ेगा। तभी प्राचीन संस्कृत, प्राकृत साहित्य की गरिमा का अनुभव किया जा सकेगा।

सन्दर्भ

1. शास्त्री, नेमिचन्द्र, *संस्कृतकाव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान,* दिल्ली, 1971।
2. दीक्षित, श्यामशंकर, *13वीं–14वीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य,* जयपुर, 1969
3. प्रथम द्वात्रिंशिका (सिद्धसेन), अनेकान्त 9/11
4. चन्द्रप्रभचरितम् (वीरनन्दि), निर्णयसागर प्रेस, 1912
5. पार्श्वनाथचरितम् (वादिराज), माणिक्यचन्द्र ग्रन्थमाला।
6. वरांगचरितम् (वर्धमानकवि), सोलापुर
7. धर्मशर्माभ्युदयम् (हरिचन्द्र), निर्णयसागर प्रेस, 1935
8. जयन्तविजयम् (वर्धमानसूरि), निर्णयसागर प्रेस, 1902
9. नरनारायणानन्द महाकाव्य (वस्तुपाल), बड़ौदा।
10. जगडूचरित (सर्वानन्द), आत्मानन्द सभा, अम्बाला सिटी
11. छत्रूचडामणि (वादीभसिंह), तंजोर
12. यशोधरचरितम् (वादिराज), धारवाड़
13. पं. पन्नालाल साहित्यचार्य, *महाकवि हरिचन्द्र– एक अध्ययन,* दिल्ली, 1975
14. गैरोला, *संस्कृत साहित्य का इतिहास,* वाराणसी।
15. भरत–बाहुबली महाकाव्य, सं. मुनि दुलहराज, लाड़नूं।
16. नेमिनिर्वाण काव्य, (वाग्भट), निर्णयसागर प्रेस।
17. जैन, जयकुमार, *पार्श्वनाथचरितम् का समीक्षात्मक अध्ययन,* मुजफ्फरनगर, 1987